राज्य, पुलिस निरीक्षक द्वारा प्रतिनिधित्वित, पुडुकोट्टई, तमिलनाडु

बनाम

ए. पार्थिबन

9 अक्टूबर, 2006

(अरिजीत पसायत एवं आर. वी. रवीन्द्रन, न्यायमूर्तिगण)

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 : धारा 7 तथा धारा 13(2) सहपठित धारा 13(1)(डी)

धारा 7 तथा धारा 13(2) सहपठित धारा 13(1)(डी) के तहत अपराध — दोषसिद्धि — परिवीक्षा पर रिहाई — वैधता — अभियुक्त को धारा 7 एवं धारा 13(2) सहपठित धारा 13(1)(डी) के तहत दोषसिद्ध किया गया — उसे पूर्ववर्ती अपराध के लिए छह माह के कठोर कारावास तथा ₹500/- अर्थदंड, तथा परवर्ती अपराध के लिए एक वर्ष के कठोर कारावास एवं ₹1,000/- अर्थदंड से दंडित किया गया — उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि धारा 13(2) सहपठित धारा 13(1)(डी) के तहत दोषसिद्धि संधार्य नहीं है, किन्तु धारा 7 के तहत दोषसिद्धि यथावत रहेगी — उच्च न्यायालय ने आगे यह भी अभिनिर्धारित किया कि एक ही कृत्य के लिए अभियुक्त को दोनों धाराओं के तहत दोषसिद्ध करना उचित नहीं होगा — धारा 360 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अपील स्वीकार करते हुए अभियुक्त को परिवीक्षा पर मुक्त कर दिया गया — इसकी शुद्धता — धारित : किसी लोक सेवक द्वारा अधिनियम की धारा 7 के तहत विचारित अवैध पारितोषिक की प्रत्येक स्वीकृति, अधिनियम की धारा 13(1)(डी) के तहत भी अपराध होगी — किन्तु यदि अवैध पारितोषिक की स्वीकृति किसी लोक सेवक द्वारा अधिनियम की धारा 7 के अनुसरण में हो, तो वह धारा 13(1)(डी) के तहत भी अपराध होगी — यदि कोई कृत्य धारा 7 तथा धारा 13(1)(डी) दोनों के अंतर्गत आता है और न्यायालय दोनों के तहत न्यूनतम दंड अधिरोपित करना चाहता है, तो दंड एक वर्ष से अधिक नहीं हो सकता — चूँकि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के पश्चात् दंड प्रक्रिया संहिता अधिनियमित हुआ है, इसलिए अभियुक्त को परिवीक्षा अधिनियम का लाभ प्रदान करने का कोई अवसर नहीं है — अतः उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 के तहत परिवीक्षा का लाभ प्रदान करना त्रुटिपूर्ण था — कारावास के दंड धारा 13(2)

तथा अन्य धारा के तहत साथ-साथ चलेंगे — परिवीक्षा अधिनियम, 1988, धारा 18 — दंड प्रक्रिया संहिता, 1973, धारा 360।

उत्तरदाता-अभियुक्त को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7 तथा धारा 13(2) सहपठित धारा 13(1)(डी) के तहत दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया गया। उत्तरदाता को प्रथम अपराध के लिए छह माह के कठोर कारावास तथा ₹500/- के अर्थदंड से दंडित किया गया और द्वितीय अपराध के लिए एक वर्ष के कठोर कारावास तथा ₹1,000/- के अर्थदंड से दंडित किया गया।

अपील में, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 13(2) सहपठित धारा 13(1)(डी) के तहत दोषसिद्धि संधार्य नहीं थी, किन्तु धारा 7 के तहत दोषसिद्धि की पुष्टि की। उच्च न्यायालय ने आगे यह भी अभिनिर्धारित किया कि एक ही कृत्य के लिए अभियुक्त को दोनों धाराओं के तहत दोषसिद्ध करना उचित नहीं होगा। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 360 के उपबंध लागू किए गए और उत्तरदाता को परिवीक्षा अधिनियम, 1958 के तहत परिवीक्षा पर मुक्त करने का निर्देश दिया गया। इसके विरुद्ध यह अपील दायर की गई।

न्यायालय के समक्ष निम्नलिखित प्रश्न विचारार्थ उत्पन्न हुआ :—

क्या कथित कृत्य एक अपराध है और यदि इसका उत्तर सकारात्मक है, तो क्या उसे एक अथवा एकाधिक उपबंधों के तहत अपराध के रूप में परिनिर्मित किया जा सकता है?

अपील स्वीकार करते हुए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया :—

1.1. अवैध पारितोषिक की प्रत्येक स्वीकृति, चाहे वह मांग के पूर्व हो या पश्चात्, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7 के तहत अपराध होगी। किन्तु यदि अवैध पारितोषिक की स्वीकृति किसी लोक सेवक द्वारा की गई मांग के अनुसरण में हो, तो वह अधिनियम की धारा 13(1)(डी) के तहत भी अपराध होगी। उत्तरदाता के विरुद्ध आरोपित अवैध पारितोषिक की मांग और प्राप्ति का कृत्य अधिनियम की धारा 7 तथा धारा 13(1)(डी), दोनों के तहत अपराध का गठन करता है। किसी एकल लेन-देन को दो भिन्न धाराओं के अंतर्गत अपराध बनाए जाने का मात्र यह परिणाम नहीं है कि अपराधी को द्विगुण दंड के लिए उत्तरदायी ठहराया जाए। उच्च न्यायालय द्वारा यह धारित करना कि जहाँ मांग और स्वीकृति दोनों हों वहाँ अवैध पारितोषिक की मांग एवं प्राप्ति का एकल कृत्य धारा 7 तथा

धारा 13(1)(डी) के तहत दो पृथक अपराध नहीं हो सकता, त्रुटिपूर्ण था। चूँकि यह एक ऐसा अपराध है जो दो भिन्न धाराओं के अंतर्गत आता है और दोनों धाराएँ पृथक-पृथक दंड का उपबंध करती हैं, अतः अपराधी को किसी एक अपराध के लिए अधिक कठोर दंड से दंडित नहीं किया जाना चाहिए। वर्तमान मामले में धारा 7 के तहत न्यूनतम दंड छह माह है तथा धारा 13(1)(डी) के तहत अपराध के लिए धारा 13(2) के अनुसार न्यूनतम दंड एक वर्ष है। यदि कोई अपराध दोनों धाराओं, अर्थात् धारा 7 तथा धारा 13(1)(डी), के अंतर्गत आता है और न्यायालय केवल न्यूनतम दंड ही प्रदान करना चाहता है, तो अधिरोपित कुल दंड एक वर्ष से अधिक नहीं हो सकता। [41-बी, सी, डी, ई]

जम्मू एवं कश्मीर राज्य बनाम विनय नंद, [2001] 2 एस.सी.सी. 504 — संदर्भित।

2. परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 18 में उपबंधित है कि उक्त अधिनियम भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 (पुराना अधिनियम) की धारा 5(2) के तहत दंडनीय अपराधों पर लागू नहीं होगा। पुरानी अधिनियम की धारा 5(2) का विशिष्ट उल्लेख किया गया था, जो वर्तमान अधिनियम की धारा 13 के अनुरूप है। किन्तु इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया, जबकि उसके पश्चात् भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम को निरसित कर 1988 में नया अधिनियम अधिनियमित किया गया। जब किसी अधिनियम को निरसित कर पुनः अधिनियमित किया जाता है और विधायिका द्वारा कोई भिन्न आशय व्यक्त नहीं किया जाता, तब निरसित अधिनियम के प्रति किया गया संदर्भ पुनः अधिनियमित उपबंधों के प्रति संदर्भ माना जाता है। [41-जी, 42-ए, बी]

3. अधिनियम की धारा 13(2) के तहत दोषसिद्धि के संबंध में परिवीक्षा अधिनियम के विषय में प्रतिपादित सिद्धांत, उक्त अधिनियम की धारा 18 में निहित स्पष्ट आदेश को दृष्टिगत रखते हुए, पूर्णतः लागू होंगे। जहाँ तक दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 360 का संबंध है, मद्रास में परिवीक्षा अधिनियम के विस्तार एवं प्रवर्तन तथा दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 562 एवं उसके स्थान पर दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 360 के अधिनियमन के कारण, धारा 360 के तहत शक्तियों का प्रयोग नहीं किया जा सकता, क्योंकि धारा 14(3)-एफ, जी के अनुसार वे शक्तियाँ निरस्त हो चुकी हैं।

न्यू सेंट्रल जूट मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम सहायक समाहर्ता, केंद्रीय उत्पाद शुल्क, [1970] 2 एस.सी.सी. 820, अवलंबित।

बिष्णु देव शॉ बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, **[1979] 3 एस.सी.सी. 714;** *ईशर दास बनाम पंजाब राज्य,* **[1973] 2 एस.सी.सी. 65; तथा** *सोमनाथ पुरी बनाम राजस्थान राज्य,* **[1972] 1 एस.सी.सी. 630, संदर्भित।**

4. जिन मामलों में किसी विशेष अधिनियम के तहत अपराध के लिए कारावास की न्यूनतम अवधि विनिर्दिष्ट की गई हो, वहाँ परिवीक्षा अधिनियम के उपबंधों का अवलंब नहीं किया जा सकता, यदि वह विशेष अधिनियम ऐसा उपबंध रखता हो जो उसके प्रावधानों को परिवीक्षा अधिनियम पर प्रधानता प्रदान करता हो। जहाँ विशेष अधिनियम में न्यूनतम दंड का उपबंध है, वहाँ परिवीक्षा अधिनियम का लाभ देने का कोई अवसर नहीं है। पुराने अधिनियम की धारा 5(2) के विपरीत, जिसमें विशेष कारणों को लिखित रूप में अभिलिखित कर न्यूनतम दंड से कम दंड देने का अधिकार था, वर्तमान अधिनियम में ऐसा कोई उपबंध नहीं है जो न्यायालय को निर्धारित न्यूनतम दंड से कम दंड देकर उदारता बरतने का अधिकार प्रदान करे। [44-ए, बी, सी]

राज्य बनाम रत्तन लाल अरोड़ा, **[2004] 4 एस.सी.सी. 590, अवलंबित।**

अधीक्षक, केंद्रीय उत्पाद शुल्क बनाम बाहुबली, **[1979] 2 एस.सी.सी. 279, संदर्भित।**

5. परिणामस्वरूप, उच्च न्यायालय ने विधि की दृष्टि से गंभीर त्रुटि की, जब उसने संहिता के तहत परिवीक्षा का लाभ प्रदान किया। अधिनियम की धारा 7 के तहत कारावास का दंड छह माह होगा तथा अधिनियम की धारा 13(2) के तहत कारावास का दंड एक वर्ष होगा, और दोनों दंड साथ-साथ चलेंगे। [44-डी]

दाण्डिक अपीलीय क्षेत्राधिकार : 2003 की दाण्डिक अपील संख्या 842

मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा दाण्डिक अपील संख्या 659/1994 में दिनांक 28.03.2002 को पारित अंतिम आदेश एवं निर्णय से।

अपीलकर्ता की ओर से : सुब्रमोनियम प्रसाद एवं वी. जी. प्रगासम।

उत्तरदाता की ओर से : के. सरदा देवी।

न्यायालय का निर्णय **अरिजीत पसायत, न्यायमूर्ति** द्वारा दिया गया।

तमिलनाडु राज्य ने यह अपील मद्रास उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा

पारित निर्णय की शुद्धता को चुनौती देते हुए दायर की है। उक्त निर्णय के द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (संक्षेप में "अधिनियम") की धारा 7 तथा धारा 13(2) सहपठित धारा 13(1)(डी) के तहत उत्तरदाता की दोषसिद्धि के संबंध में विचार किया गया था।

तथ्यों का संक्षिप्त उल्लेख पर्याप्त होगा :

उत्तरदाता को अधिनियम की धारा 7 तथा धारा 13(2) सहपठित धारा 13(1)(डी) के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया था। उसे प्रथम अपराध के लिए छह माह के कठोर कारावास तथा ₹500/- के अर्थदंड से दंडित किया गया था और अर्थदंड अदा न करने पर अतिरिक्त कारावास का भी उपबंध किया गया था। द्वितीय अपराध के लिए उसे एक वर्ष के कठोर कारावास तथा ₹1,000/- के अर्थदंड से दंडित किया गया था। उक्त दोषसिद्धि एवं दंड, मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी तथा विशेष न्यायाधीश, पुडुकोट्टई द्वारा अधिरोपित किए गए थे। उत्तरदाता ने विशेष प्रकरण संख्या 4 वर्ष 1991 में दिनांक 28.03.2002 के निर्णय के विरुद्ध मद्रास उच्च न्यायालय में दाण्डिक अपील संख्या 659/1994 दायर की। उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 13(2) सहपठित धारा 13(1)(डी) के तहत दोषसिद्धि संधार्य नहीं थी और तदनुसार उसे अपास्त कर दिया। तथापि, अधिनियम की धारा 7 के तहत दोषसिद्धि की पुष्टि की गई। उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि एक ही कृत्य के लिए अभियुक्त को दोनों धाराओं के तहत दोषसिद्ध करना उचित नहीं होगा। तदनुसार, अधिनियम की धारा 13(2) सहपठित धारा 13(1)(डी) के तहत दोषसिद्धि को अपास्त कर दिया गया तथा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में "दं.प्र.सं.") की धारा 360 के उपबंध लागू करते हुए उत्तरदाता को परिवीक्षा पर मुक्त किए जाने का निर्देश दिया गया।

अपीलकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण स्पष्टतः त्रुटिपूर्ण है। अधिनियम की धारा 7 तथा धारा 13(2) सहपठित धारा 13(1)(डी) पृथक-पृथक रूप से कार्य करती हैं, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि विचारण न्यायालय धारा 7 तथा धारा 13(2) सहपठित धारा 13(1)(डी) के तहत दोषसिद्धि अभिलिखित करने में न्यायोचित नहीं था। इसके अतिरिक्त, अधिनियम के तहत अपराधों पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 के उपबंध लागू नहीं होते। अपीलकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि जहाँ किसी विधि में न्यूनतम दंड विनिर्दिष्ट किया गया हो, वहाँ न्यायालय किसी भी परिस्थिति में उस दंड को कम नहीं कर सकता। इस

संदर्भ में *जम्मू एवं कश्मीर राज्य बनाम विनय नंद,* [2001] 2 एस.सी.सी. 504 के निर्णय पर भरोसा किया गया। अपराध की गंभीरता तथा अधिनियम के तहत अपराधों के विरुद्ध सामाजिक प्रतिक्रिया को देखते हुए, धारा 360 का प्रयोग लागू नहीं होता। सामान्य खंड अधिनियम, 1897 (संक्षेप में "सामान्य खंड अधिनियम") की धारा 8 के प्रभाव से, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 (संक्षेप में "पुराना अधिनियम") की धारा 5(2) का उल्लेख स्पष्ट रूप से वर्तमान अधिनियम की धारा 13(2) पर लागू होता है। अतः यह निवेदन किया गया कि उच्च न्यायालय का आदेश स्पष्टतः अस्थिर एवं विधि-विरुद्ध है।

उत्तरदाता की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यद्यपि धारा 7 तथा धारा 13(2) सहपठित धारा 13(1)(डी) भिन्न क्षेत्रों में कार्य करती हैं, तथापि किसी विशिष्ट मामले में जहाँ केवल एक ही अपराध हो, वहाँ धारा 7 तथा धारा 13(2) सहपठित धारा 13(1)(डी) दोनों के तहत दोषसिद्धि नहीं की जा सकती। आगे यह भी निवेदन किया गया कि परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 18 केवल पुराने अधिनियम की धारा 5(2) के तहत अपराधों तथा वर्तमान अधिनियम की धारा 13(2) के अनुरूप उपबंधों पर लागू होती है। चूँकि परिवीक्षा अधिनियम की धारा 18, वर्तमान अधिनियम की धारा 7 पर लागू नहीं होती, जो कि भारतीय दंड संहिता की धारा 161 के अनुरूप है, इसलिए धारा 7 के तहत दोषसिद्धि होने पर परिवीक्षा का लाभ दिया जा सकता है। यह भी निवेदन किया गया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 स्पष्ट रूप से लागू होती है। उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि धारा 360 के तहत उच्च न्यायालय ने जो शक्ति प्रयोग की है, वह लाभकारी उपबंध है और संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अधिकारिता का प्रयोग करते हुए उसमें हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। [भारत का संविधान, 1950 (संक्षेप में "संविधान")]।

उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया यह दृष्टिकोण कि उत्तरदाता को अधिनियम की धारा 7 तथा धारा 13(1)(डी) के तहत अपराधों के लिए एक साथ दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता, स्वीकार्य नहीं है। भारतीय दंड संहिता की धारा 71 इस प्रश्न का पूर्ण उत्तर प्रदान करती है। वह इस प्रकार है :—

> "71. *अनेक अपराधों से निर्मित अपराध के लिए दंड की सीमा।* — जहाँ कोई कार्य ऐसा अपराध हो जो स्वयं भागों से निर्मित हो, और उन भागों में से कोई भाग स्वयं भी अपराध हो, वहाँ अपराधी को उन अपराधों में से एक से अधिक अपराधों के लिए दंडित नहीं किया जाएगा, जब तक कि इसके विपरीत कोई स्पष्ट उपबंध न किया

गया हो।

जहाँ कोई कार्य किसी ऐसी विधि की दो या अधिक पृथक परिभाषाओं के अंतर्गत अपराध हो, जो उस समय प्रवृत्त हो और जिसके द्वारा अपराधों को परिभाषित या दंडित किया जाता हो; अथवा

जहाँ अनेक कार्य, जिनमें से एक या एक से अधिक कार्य स्वयं पृथक रूप से अपराध हों, संयुक्त रूप से किए जाने पर कोई भिन्न अपराध निर्मित करते हों,

वहाँ अपराधी को उस न्यायालय द्वारा, जो उसका विचारण कर रहा है, उन अपराधों में से किसी एक अपराध के लिए अधिरोपित किए जा सकने वाले दंड से अधिक कठोर दंड नहीं दिया जाएगा।"

इस विधिक स्थिति को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 220 द्वारा और अधिक स्पष्ट किया गया है। उक्त धारा इस प्रकार है :—

"220. *एक से अधिक अपराधों के लिए संयुक्त विचारण।*—(1) यदि कार्यों की एक श्रृंखला, जो इस प्रकार परस्पर संबद्ध हो कि वे एक ही संव्यवहार का गठन करें, के माध्यम से एक व्यक्ति द्वारा एक से अधिक अपराध किए गए हों, तो उस पर ऐसे प्रत्येक अपराध के लिए एक ही विचारण में आरोप लगाया जा सकेगा और उसका विचारण किया जा सकेगा।

"(2) जब किसी व्यक्ति पर आपराधिक न्यासभंग अथवा संपत्ति के बेईमानीपूर्ण दुरुपयोग के एक या अधिक अपराधों का, जो उपधारा (2) में उपबंधित है, अथवा धारा 212 की उपधारा (1) अथवा धारा 219 की उपधारा (1) के प्रयोजनार्थ किसी अपराध के किए जाने में सहायता देने या उसे छिपाने के उद्देश्य से लेखों के मिथ्याकरण के एक या अधिक अपराधों का आरोप हो, तब ऐसे प्रत्येक अपराध के लिए उस पर एक ही विचारण में आरोप लगाया जा सकेगा और उसका विचारण किया जा सकेगा।

(3) यदि कार्य ऐसे हों कि वे किसी प्रवृत्त विधि की दो या अधिक पृथक परिभाषाओं के अंतर्गत अपराध हों, जिसके द्वारा अपराधों को परिभाषित या दंडित किया जाता है, तो अपराधी पर ऐसे प्रत्येक अपराध के लिए एक ही विचारण में आरोप लगाया जा

सकेगा और उसका विचारण किया जा सकेगा।"

(4) यदि अनेक कार्य, जिनमें से एक या अधिक कार्य स्वयं पृथक रूप से अपराध का गठन करते हों, संयुक्त रूप से किए जाने पर कोई भिन्न अपराध निर्मित करते हों, तो उन कार्यों के लिए अभियुक्त व्यक्ति पर, उन कार्यों के संयुक्त परिणामस्वरूप गठित अपराध के लिए तथा उन कार्यों में से किसी एक अथवा अधिक द्वारा गठित किसी भी अपराध के लिए, एक ही विचारण में आरोप लगाया जा सकेगा और उसका विचारण किया जा सकेगा।

(5) इस धारा में निहित कोई भी बात भारतीय दंड संहिता (1860 का अधिनियम 45) की धारा 71 को प्रभावित नहीं करेगी।"

निर्णायक प्रश्न यह है कि क्या आरोपित कृत्य एक अपराध है और यदि इसका उत्तर सकारात्मक है, तो क्या उसे एक अथवा एकाधिक उपबंधों के तहत अपराध के रूप में परिनिर्मित किया जा सकता है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 220 की पृष्ठभूमि में भारतीय दंड संहिता की धारा 71 का यही सार है।

अवैध पारितोषिक की प्रत्येक स्वीकृति, चाहे वह मांग से पूर्व हो अथवा पश्चात्, अधिनियम की धारा 7 के अंतर्गत आती है। किन्तु यदि अवैध पारितोषिक की स्वीकृति किसी लोक सेवक द्वारा की गई मांग के अनुसरण में हो, तो वह अधिनियम की धारा 13(1)(डी) के अंतर्गत भी आएगी। उत्तरदाता के विरुद्ध आरोपित अवैध पारितोषिक की मांग और उसकी प्राप्ति का कृत्य अधिनियम की धारा 7 तथा धारा 13(1)(डी), दोनों के तहत अपराध का गठन करता है। यह एक ही संव्यवहार है, किन्तु वह दो भिन्न धाराओं के तहत अपराध का गठन करता है। मात्र इस कारण कि अपराध दो भिन्न धाराओं के तहत आता है, अपराधी द्विगुण दंड के लिए उत्तरदायी नहीं हो जाता। उच्च न्यायालय ने यह धारित करके त्रुटि की कि जहाँ मांग और स्वीकृति दोनों विद्यमान हों, वहाँ अवैध पारितोषिक प्राप्त करने का एकल कृत्य धारा 7 तथा धारा 13(1)(डी) दोनों के तहत अपराध नहीं हो सकता। चूँकि यह एक ऐसा अपराध है जो दो भिन्न धाराओं के अंतर्गत आता है और वे भिन्न-भिन्न दंड का उपबंध करती हैं, इसलिए अपराधी को उन दोनों अपराधों में से किसी एक के लिए अधिरोपित किए जा सकने वाले दंड से अधिक कठोर दंड नहीं दिया जाना चाहिए। वर्तमान मामले में धारा 7 के तहत न्यूनतम दंड छह माह है तथा धारा 13(1)(डी) के तहत अपराध के लिए धारा 13(2) के अनुसार न्यूनतम दंड एक वर्ष है। यदि कोई अपराध धारा 7 तथा धारा 13(1)(डी)

दोनों के अंतर्गत आता है और न्यायालय केवल न्यूनतम दंड अधिरोपित करना चाहता है, तो दंड की अवधि एक वर्ष होगी।

उत्तरदाता की ओर से अगला तर्क यह प्रस्तुत किया गया कि अधिनियम में ऐसा कोई निषेधात्मक उपबंध नहीं है जो परिवीक्षा अधिनियम के लाभ के विस्तार को रोकता हो; अतः उक्त अधिनियम के उपबंध भी लागू किए जा सकते थे, जैसा कि उच्च न्यायालय ने शमनकारी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए किया है। यह भी इंगित किया गया कि उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 को भी उचित रूप से लागू किया था। परिवीक्षा अधिनियम की धारा 18 में यह उपबंधित है कि उक्त अधिनियम भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 (पुराना अधिनियम) की धारा 5(2) के तहत दंडनीय अपराधों पर लागू नहीं होगा। पुरानी अधिनियम की धारा 5(2) का विशिष्ट उल्लेख किया गया था, जो वर्तमान अधिनियम की धारा 13 के अनुरूप है। किन्तु 1988 में वर्तमान अधिनियम के अधिनियमित होकर प्रवृत्त होने के पश्चात् भी परिवीक्षा अधिनियम में कोई संशोधन नहीं किया गया। परिवीक्षा अधिनियम में संशोधन न किए जाने के तथ्य पर विशेष बल दिया गया, क्योंकि उसमें पुराने अधिनियम का उल्लेख है, वर्तमान अधिनियम का नहीं। यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि चूँकि परिवीक्षा अधिनियम में इसके अनुरूप कोई संशोधन नहीं किया गया है, इसलिए उसके उपबंध वर्तमान अधिनियम के तहत मामलों पर लागू नहीं किए जा सकते। यह तर्क सामान्य खंड अधिनियम, 1897 की धारा 8 में निहित सिद्धांत की उपेक्षा करता है। जब किसी अधिनियम को निरसित कर पुनः अधिनियमित किया जाता है और विधायिका द्वारा कोई भिन्न आशय व्यक्त नहीं किया जाता, तब निरसित अधिनियम के प्रति किया गया संदर्भ पुनः अधिनियमित उपबंधों के प्रति संदर्भ माना जाता है।

संसद ने परिवीक्षा अधिनियम अधिनियमित किया और उसकी धारा 1(3) में यह उपबंध किया गया कि वह किसी राज्य में उस तिथि से प्रवृत्त होगा, जिसे राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियुक्त करे। तमिलनाडु राज्य में यह अधिनियम वर्ष 1964 में संपूर्ण राज्य में प्रवृत्त हुआ। अधिनियम की धारा 19 में यह उपबंध है कि धारा 18 के उपबंधों के तहत रहते हुए, दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (जिसे आगे "पुरानी संहिता" कहा गया है) की धारा 562 उन राज्यों अथवा उनके भागों में लागू नहीं होगी, जहाँ परिवीक्षा अधिनियम लागू किया गया है। पुरानी संहिता निरसित कर उसके स्थान पर नई संहिता अधिनियमित की गई और नई संहिता की धारा 360, पुरानी संहिता की धारा 562 के अनुरूप उपबंध है। *बिष्णु देव शॉ बनाम पश्चिम बंगाल राज्य,* [1979] 3 एस.सी.सी. 714 में इस न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 वस्तुतः पुरानी संहिता की धारा 562 का पुनः अधिनियमन है। इसके अतिरिक्त, परिवीक्षा अधिनियम की धारा 18 में अन्य बातों के साथ यह उपबंध है कि उक्त अधिनियम की कोई भी बात पुराने अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (2) अथवा धारा 5 की उपधारा (1) के उपबंधों को प्रभावित नहीं करेगी। *ईशर दास बनाम पंजाब राज्य,* [1973] 2 एस.सी.सी. 65 तथा *सोमनाथ पुरी बनाम राजस्थान राज्य,* [1972] 1 एस.सी.सी. 630 में, परिवीक्षा अधिनियम की धारा 18 का विशेष उल्लेख करते हुए, इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया कि पुराने अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (2) के तहत अपराध को उसकी कार्यवाही से अपवर्जित कर दिया गया है। पुनः अधिनियमित अधिनियम की धारा 13(2), पुराने अधिनियम की धारा 5(2) के अनुरूप उपबंध है।

उपर्युक्त उपबंधों का महत्व, नई संहिता तथा नए अधिनियम के अधिनियमन को ध्यान में रखते हुए, सामान्य खंड अधिनियम, 1897 की धारा 8 के आलोक में विचारणीय है, जो इस प्रकार है :—

> "8. निरसित एवं पुनः अधिनियमित अधिनियमों के प्रति संदर्भों का अर्थनिर्णयन। [(1) जहाँ यह अधिनियम अथवा इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् निर्मित कोई [केंद्रीय अधिनियम] या विनियम किसी पूर्ववर्ती अधिनियम के किसी उपबंध को, चाहे संशोधन सहित या उसके बिना, निरसित कर पुनः अधिनियमित करता है, वहाँ किसी अन्य अधिनियम अथवा किसी लिखत में उस निरसित उपबंध के प्रति किए गए संदर्भ, जब तक कोई भिन्न आशय प्रकट न हो, पुनः अधिनियमित उपबंध के प्रति संदर्भ माने जाएँगे।
>
> (2) जहाँ 15 अगस्त, 1947 से पूर्व, यूनाइटेड किंगडम की संसद का कोई अधिनियम किसी पूर्ववर्ती अधिनियम के किसी उपबंध को, चाहे संशोधन सहित या उसके बिना, निरसित कर पुनः अधिनियमित करता है, वहाँ किसी केंद्रीय अधिनियम अथवा किसी विनियम अथवा लिखत में उस निरसित उपबंध के प्रति किए गए संदर्भ, जब तक कोई भिन्न आशय प्रकट न हो, पुनः अधिनियमित उपबंध के प्रति संदर्भ माने जाएँगे।"

उक्त उपबंध का उद्देश्य स्पष्ट और प्रत्यक्ष है कि जब किसी अधिनियम या विनियम को निरसित कर पुनः अधिनियमित किया जाता है, तब किसी अन्य अधिनियम में निरसित

पूर्ववर्ती अधिनियम के उपबंधों के प्रति किए गए संदर्भों को, जब तक कोई भिन्न आशय प्रकट न हो, पुनः अधिनियमित नवीन उपबंधों के प्रति संदर्भ के रूप में पढ़ा और समझा जाना चाहिए। समान परिस्थितियों से निपटने के लिए सामान्य खंड अधिनियम की धारा 8 में भी इसी प्रकार की स्थिति का प्रावधान किया गया है। *न्यू सेंट्रल जूट मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम सहायक समाहर्ता, केंद्रीय उत्पाद शुल्क, इलाहाबाद एवं अन्य,* [1970] 2 एस.सी.सी. 820 में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 के उपबंधों को केंद्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1944 की धारा 12 में उल्लिखित सीमा शुल्क अधिनियम, 1878 के स्थान पर पढ़ना संभव है। *बिहार राज्य बनाम एस. के. राय,* ए.आई.आर. 1966 एस.सी. 1995 में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि सामान्य खंड अधिनियम की धारा 8 के प्रभाव से भारतीय खान अधिनियम, 1923 की धारा 2 के खंड (ई) में प्रयुक्त "नियोजक" शब्द को कोयला खान भविष्य निधि एवं बोनस योजना अधिनियम, 1948 में निहित संदर्भों के प्रयोजनार्थ खान अधिनियम, 1952 की धारा 2 के खंड (एल) में परिभाषित "स्वामी" शब्द के प्रति संदर्भ के रूप में पढ़ा और समझा जाना चाहिए, जिसने 1923 के अधिनियम का स्थान ले लिया था। फलस्वरूप, परिवीक्षा अधिनियम की धारा 19 में पुरानी संहिता की धारा 562 तथा परिवीक्षा अधिनियम की धारा 18 में पुराने अधिनियम की धारा 5(2) के प्रति किए गए संदर्भों को अनिवार्यतः नई संहिता और नवीन अधिनियम के उनके अनुरूप उपबंधों के प्रति संदर्भ के रूप में पढ़ा जाना चाहिए। अतः अधिनियम की धारा 13(2) के तहत दोषसिद्धि के संबंध में परिवीक्षा अधिनियम के अंतर्गत प्रतिपादित सिद्धांत, उक्त अधिनियम की धारा 18 में निहित स्पष्ट आदेश को दृष्टिगत रखते हुए, किसी भी प्रकार से विस्तारित नहीं किए जा सकते। जहाँ तक दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 का संबंध है, परिवीक्षा अधिनियम के मद्रास राज्य में विस्तार और प्रवर्तन की तिथि से तथा पुरानी संहिता की धारा 562 के निरसन एवं उसके स्थान पर संहिता की धारा 360 के अधिनियमन के पश्चात्, धारा 360 के तहत शक्तियों का न तो आह्वान किया जा सकता है और न ही उनका प्रयोग किया जा सकता है, जैसा कि वर्तमान मामले में किया गया है।

अधीक्षक, केंद्रीय उत्पाद शुल्क, बंगलौर बनाम बाहुबली, [1979] 2 एस.सी.सी. 279 में, भारत रक्षा नियमावली के नियम 126-पी(2)(ii) तथा भारत रक्षा अधिनियम, 1962 की धारा 43, जो लगभग उसी आशय की थीं जैसा कि वर्तमान अधिनियम की धारा 28 में निहित है, पर विचार करते हुए न्यायालय ने अवलोकित किया कि जहाँ किसी विशिष्ट

अधिनियम में, जो परिवीक्षा अधिनियम के पश्चात् अधिनियमित किया गया हो, न्यूनतम कारावास का दंड विनिर्दिष्ट किया गया हो, वहाँ परिवीक्षा अधिनियम के उपबंधों का अवलंब नहीं किया जा सकता, यदि उस विशेष अधिनियम में ऐसा कोई उपबंध हो जो उसके उपबंधों को किसी अन्य अधिनियम के संदर्भ के बिना प्रभावी बनाता हो तथा जो परिवीक्षा अधिनियम के प्रतिकूल प्रभाव रखता हो। ऐसी स्थिति में अभियुक्त को परिवीक्षा अधिनियम का लाभ प्रदान करने का कोई अवसर नहीं है। पुराने अधिनियम की धारा 5(2) के उपबंधों के विपरीत, जिनमें एक वर्ष के न्यूनतम दंड से कम दंड देने का प्रावधान "विशेष कारणों" को अभिलिखित कर किया जा सकता था, वर्तमान अधिनियम में ऐसा कोई उपबंध नहीं है जो न्यायालय को निर्धारित न्यूनतम दंड से कम दंड देकर उदारता प्रदर्शित करने की अनुमति देता हो। इन पहलुओं को *राज्य, पुलिस अधीक्षक द्वारा, नई दिल्ली बनाम रत्तन लाल अरोड़ा,* [2004] 4 एस.सी.सी. 590 में भी रेखांकित किया गया है।

फलस्वरूप, उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने संहिता के तहत भी परिवीक्षा का लाभ प्रदान करके विधि की दृष्टि से गंभीर त्रुटि की है। अतः अधिनियम की धारा 7 के तहत छह माह तथा अधिनियम की धारा 13(2) के तहत एक वर्ष का कारावास होगा और दोनों दंड साथ-साथ चलेंगे। जहाँ तक दो पृथक आरोपों पर अधिरोपित अर्थदंड तथा उसके व्यतिक्रम में देय कारावास का संबंध है, वे अप्रभावित रहेंगे और उनकी पुष्टि की जाती है।

तदनुसार, अपील स्वीकार की जाती है।

वी.एस.एस. अपील स्वीकार की गई।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।